संविधान और संवाद की संस्कृति

अमन मदान

मानव समाज में विविधता होना लाजिमी है। यह विविधता विचारों, सामाजिक-आर्थिक स्तर व और भी कई आयामों में हो सकती है। इन सभी विविधताओं के साथ ही हमें अपने संविधान के अनुसार ऐसा समाज बनाना है, जिसमें सभी इंसानों के लिए पारस्परिक इज़्ज़त हो।

यह लेख संविधान की अपेक्षाओं में शामिल लोकतंत्र, इंसानी व्यवहार, बन्धुत्व, दोस्ती, ताक़त, विरोध जैसे शब्दों को खँगालता है, और इन्हें व इनके अंतर्सम्बन्धों को समझने में मदद करता है। यह संवाद को लोकतंत्र के फलने-फूलने के लिए आवश्यक पहलू के रुप में रखता है, और संवाद की संस्कृति कैसे बनाई जाए, इसके कुछ तरीक़े प्रस्तुत करता है। -सं.

26 नवम्बर, 1949 को डॉ भीमराव रामजी अम्बेडकर के नेतृत्व में एक विशेष समिति द्वारा तैयार किए गए संविधान को भारत की संविधान सभा ने अपनाया था। इस सभा में की गईं चर्चाओं का निष्कर्ष था कि भारत में लोकतंत्र की प्रणाली को स्थापित किया जाए। लोकतंत्र ही क्यों, राजतंत्र और राजा-महाराजाओं की पुरानी व्यवस्था को फिर से क्यों नहीं? क्या किया जाना चाहिए और कैसे? इसपर हर समाज में लोगों की अलग-अलग राय होती है। लोकतंत्र में यह तय करने का ज़्यादा अच्छा तरीक़ा है कि मतभेद की स्थिति में क्या करना है। यह आमतौर पर सभी को सुनकर और सभी के विचारों पर विचार करके आगे बढ़ता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि हम यह तय करने की कोशिश कर रहे हैं कि शिक्षा के निजीकरण का समर्थन करना है, या सरकारी स्कूलों के विकास का। कुछ लोग कहते हैं कि केवल निजी स्कूल ही अच्छा काम करते हैं, लेकिन कुछ का मानना है कि सही सहयोग मिलने पर सरकारी स्कूल निजी स्कूलों से बेहतर हो सकते हैं। तब हमें क्या करना चाहिए?

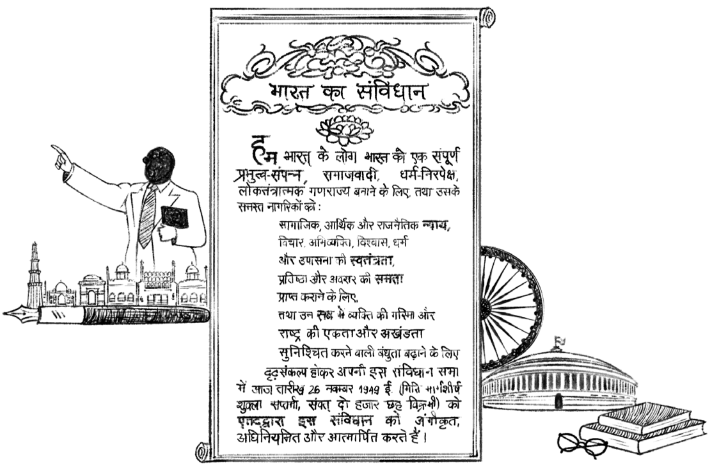
हमारे पास हमेशा अलग-अलग विचारों और विचारधाराओं वाले व अलग-अलग संसाधनों और शक्तियों वाले लोग होंगे। लोकतंत्र का उसूल यह है कि हम एक दूसरे की बात सुनें, और फिर तर्क व मूल्यों पर मन्थन करते हुए निर्णय लें कि क्या करना चाहिए। यह राजतंत्र से भिन्न है जहाँ राजा सिर्फ़ अपने समर्थकों की बात सुनता है, और फिर निर्णय लेता है कि उसे क्या करना है। लोकतंत्र में अपेक्षा की जाती है कि लोग सीधे ही आपस में बात करें या फिर उनके प्रतिनिधि एक दूसरे से बात करके निर्णय लें। यह तरीक़ा राजतंत्र व्यवस्था से बेहतर माना जाता है। किसी भी राजतंत्र में राजा मूलतः सबसे शक्तिशाली व्यक्ति या उसका पुत्र होता है। जो राजा बनता है, वह मूल्यों और तर्कों पर सोचने की क्षमता के आधार पर नहीं बनता। वह इसलिए बनता है क्योंकि वह या तो सबसे शक्तिशाली फ़ौज का जनरल है, या उस जनरल का चहीता पुत्र। उसका न्यायपूर्ण होना या साफ़ तरीक़े से सोच पाना कोई ज़रूरी नहीं है। निर्णय तो साफ़ और स्पष्ट सोच व नैतिक उसूलों पर होना चाहिए, और इसमें आपसी संवाद बेहद ज़रूरी होता है। इसकी ज़्यादा सम्भावना लोकतंत्र में होती है, न कि राजतंत्र में।

साफ़ सोच और आपस में तर्क के आधार पर चर्चा करना व निर्णय लेना सिर्फ़ जनप्रतिनिधियों का काम नहीं है। लोकतंत्र का आधार यह है कि लोग स्वयं सोचें, और सबसे सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए एक दूसरे के साथ चर्चा करें। अगर हम ख़ुद सोचना और आपस में चर्चा करना बन्द कर दें, तब हम वापस उस राजशाही में पहुँच जाएँगे जहाँ कोई और हमारे लिए फ़ैसले लेगा। और हम किसी और के सोचने की क्षमता पर मोहताज हो जाएँगे, जिसपर हमें शुरू से ही शक है।

विवादों में निर्णय कैसे लेना चाहिए ?

सारा राजनैतिक दर्शन और हर क़िस्म की सरकार इस सवाल पर टिकी है कि जब मतों में अन्तर होता है, तब निर्णय कैसे लें। जो लोग हमसे अलग सोचते हैं उनसे परस्पर व्यवहार करने के कई तरीक़े होते हैं। आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला तरीक़ा होता है, दूसरों के विचारों को स्वीकार किए बिना उन्हें वह करने के लिए मजबूर करना जो हम सोचते हैं कि सही है। उदाहरण के लिए, जो लोग निजी स्कूलों में विश्वास करते हैं, वे किसी और की बात सुनने से इंकार कर सकते हैं, और जो चाहते हैं वही करते रहते हैं। यदि कोई विरोध करता है, उसे जेल में डाल दिया जाता है, सरकार द्वारा पीटा जाता है, परेशान किया जाता है, इत्यादि। निजी स्कूली शिक्षा के विरोधी भी इसी तरह ज़बरदस्ती के तरीक़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं। वे निजी स्कूलों की ओर जाने वाली सड़कों को अवरुद्ध कर सकते हैं, उन्हें काम करने से रोक सकते हैं, उनका समर्थन करने वालों के साथ दुर्व्यवहार कर सकते हैं, इत्यादि।

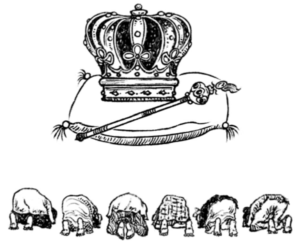
कुछ लोगों का मानना है कि केवल ज़बरदस्ती ही काम करती है। वे कहते हैं कि दूसरे लोग सुनते नहीं हैं, इसलिए सबसे अच्छा विकल्प यही है कि आप मज़बूत बनें, और जो सही है उसके साथ, बिना किसी और की परवाह किए, आगे बढ़ें। इसमें समस्या यह है कि हमें पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि हम सही हैं। यह आश्वस्त होने के लिए, कि हम सही हैं, हमें अपने तर्क और साक्ष्य पर ध्यान देना चाहिए कि उसमें किसी भी प्रकार की ख़ामी तो नहीं। लेकिन जो लोग केवल ज़बरदस्ती में विश्वास करते हैं, वे पहले से ही कह रहे हैं कि वे किसी ऐसे व्यक्ति से बात नहीं करेंगे या उसकी बात नहीं सुनेंगे, जो सोचता है कि वे ग़लत हैं। यानी, अगर कोई हमें हमारी ग़लती दिखाता है, हम उसकी बात ही नहीं सुनेंगे। हमारे आलोचक क्या कह रहे हैं, इसपर विचार करने से इंकार करके हम अपने सोचने के तरीक़ों में गम्भीर समस्याओं को आसानी से नज़रन्दाज़ कर सकते हैं। ज़बरदस्ती का रास्ता हमें सर्वोत्तम समाधान नहीं दे सकता।



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय



लोकतंत्र



राजतंत्र

चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

ज़बरदस्ती के तरीक़ों की एक और समस्या है। ज़बरदस्ती का तरीक़ा संख्या और शक्ति पर आधारित होता है। ज़बरदस्ती का रास्ता अपनाने वाले कहते हैं कि हम ताक़तवर हैं, इसलिए हम वही करेंगे जो हमें सही लगेगा। लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि कोई व्यक्ति शक्तिशाली है, क्या यह आवश्यक है कि उसके पास वास्तव में सबसे अच्छा उत्तर भी हो कि वह वास्तव में सही है? यदि सरकार बहुत शक्तिशाली है और सभी निजी स्कूलों पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय लेती है, तब सिर्फ़ इसलिए कि वह शक्तिशाली है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह सही काम कर रही है। ऐसे ही, यदि कुछ लोगों के पास दूसरों की तुलना में अधिक पैसा है (अधिक पैसा होना एक प्रकार की शक्ति है), और वे महँगे निजी स्कूलों के लिए उच्च फ़ीस का भुगतान करने में सक्षम हैं, तब इसका मतलब यह क़तई नहीं है कि यह पूरे समाज के लिए सबसे अच्छी नीति है।

हम अपने आलोचकों से बहुत-सी बातें सीख सकते हैं। निजी बनाम सरकारी स्कूलों की बहस में यह सम्भव है कि कोई ऐसी बात बता दे, जिसके बारे में हमने पहले सोचा ही नहीं था। उदाहरण के लिए, कोई यह बता सकता है कि अधिकांश निजी स्कूल कम फ़ीस लेते हैं, और काफ़ी ख़राब तरीक़े से काम करते हैं। वास्तव में, जिस तरह की फ़ीस वे बच्चों के माता-पिता से प्राप्त कर सकते हैं, उसमें वे अच्छी तरह से प्रशिक्षित और जानकार शिक्षकों को नियुक्त नहीं कर सकते। वे कभी भी अच्छे से नहीं पढ़ा सकेंगे। अच्छे शिक्षक पाने और बनाए रखने के लिए बच्चों से प्रति माह लगभग 2000 रुपए फ़ीस लेनी पड़ेगी। लेकिन आधे से ज़्यादा भारतीय परिवार इतनी ज़्यादा फ़ीस नहीं दे सकते, तब क्या हम अब भी उस व्यापक तरीक़े से कह सकते हैं कि भारत में केवल निजी स्कूल होने चाहिए?

या किसी ऐसे व्यक्ति को लें जो सरकारी स्कूलों के ख़िलाफ़ बहस कर रहा है, और कहता है कि वहाँ तो शिक्षकों को ठीक से पढ़ाने का मौक़ा ही नहीं दिया जाता। सरकारी स्कूल के अधिकांश शिक्षकों को साल में कई बार सर्वेक्षण, चुनाव, आदि कराने के लिए सरकारें इधर-उधर भेज देती हैं। वे पाठ्यक्रम कैसे पूरा कर सकते हैं? क्या हम अब भी इतने सरल तरीक़े से कहेंगे कि भारत में केवल सरकारी स्कूल ही होने चाहिए?

ज़ाहिर है, सभी भारतीयों को अच्छी शिक्षा कैसे दी जाए, यह सवाल जटिल है, और इसे कई पहलुओं से देखें, तब ज़्यादा अच्छा होगा।

यह विचार, कि व्यक्ति को दूसरों पर वह थोप देना चाहिए जो वह ख़ुद चाहता है, बहुत आकर्षक है, लेकिन आमतौर पर यह एक अच्छा दृष्टिकोण नहीं है। जब तक कोई व्यक्ति जन्मजात जीनियस न हो (जोकि बड़ा दुर्लभ होता है), तब तक हमेशा दूसरों की बात सुनकर उसपर सोचना बेहतर होता है, ख़ासकर उनकी जो बहुत अलग तरीक़े से सोचते हैं। विभिन्न तर्कों को सुनने के बाद ही हम हर चीज़ को अधिक व्यापक और सम्पूर्ण तरीक़े से समझना शुरू कर सकते हैं।

सिर्फ़ दबाव के आधार पर निर्णय लेने में समस्या यह है कि जो किया जाएगा वह वही होगा, जो सबसे शक्तिशाली सोचता है कि किया जाना चाहिए। ज़रूरी नहीं कि यह सबसे अच्छा निर्णय हो। भारत के बच्चों के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसका निर्णय केवल सत्ता द्वारा करने के बजाय, हमें वास्तव में नैतिक विचारों, तर्क और साक्ष्यों के आधार पर लेना चाहिए। यह लोकतंत्र का केन्द्रीय सिद्धान्त है कि लोग ध्यान से सोचें और एक दूसरे की बात सुनें, ताकि बेहतर निर्णय पर पहुँच सकें।

संवाद की संस्कृति

लोकतंत्र को फलने-फूलने के लिए वास्तव में संवाद की संस्कृति और लोगों के बीच कुछ ख़ास तरह के रिश्तों की ज़रूरत होती है। यदि ऐसी संस्कृति और रिश्ते मौजूद नहीं हैं, लोकतंत्र और राजतंत्र के बीच कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। हमें एक ऐसी संस्कृति की आवश्यकता है जहाँ कोई दूसरों से बात कर सके, कुछ तर्क दे सके, दूसरे लोगों के तर्क सुने, फिर सोचे।

संवाद की संस्कृति कुछ ज्ञान, मूल्यों और प्रथाओं को समाज में व्यापक रूप से फैलाने की माँग करती है। जो लोग लोकतंत्र को बढ़ावा देना चाहते हैं, उनके लिए चुनौती है कि कैसे अधिक-से-अधिक लोगों—बच्चों, युवाओं और वयस्कों—में इस संस्कृति को फैलाएँ।

तर्क की संस्कृति

तर्क की संस्कृति का अर्थ है, लोग समझ सकें कि तार्किक रूप से क्या उचित है। और इस तरह की तार्किकता को वे रोज़ाना व्यवहार में प्रयोग करना जानें। विभिन्न प्रश्नों के बारे में स्पष्ट और गम्भीर रूप से सोचने में लोगों को सक्षम होना चाहिए। इसमें कई चीज़ें शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यह जाँचना कि "यदि सरकारी स्कूलों की इमारत को हर साल रँगा जाए, तब उनमें बच्चे अच्छी पढ़ाई करेंगे" जैसे कथन क्या सही हैं। हम बिलकुल चाहेंगे कि सरकारी स्कूलों की दीवारें साफ़ और रंगीन हों, पर वास्तव में, इस वाक्य में तर्क सही नहीं है। हालाँकि ताज़ा रंग-रोगन वाली इमारतें अच्छी हैं, लेकिन अच्छी शिक्षा के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षकों को जानकार होना चाहिए, पढ़ाना आना चाहिए, उपस्थित रहना चाहिए और पढ़ाने के लिए इच्छुक होना चाहिए। रंग-रोगन वाली इमारत होने से इसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इसलिए यह सीखना महत्त्वपूर्ण है कि हमें हमेशा किसी तर्क के आधारों की जाँच करनी चाहिए, और देखना चाहिए कि क्या वे वास्तव में निष्कर्षों से मेल खाते हैं। इस कौशल को सीखना स्पष्ट या आलोचनात्मक सोच सीखने का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। हमारे निर्णयों में सुधार और बातचीत के लिए स्पष्ट रूप से सोचने में सक्षम होना आवश्यक है। स्पष्ट सोच के बुनियादी ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देने के लिए ग़ैर-सरकारी संगठन और स्कूल बहुत कुछ कर सकते हैं। इस बारे में इंटरनेट पर कई सामग्रियाँ उपलब्ध हैं कि यह कैसे किया जा सकता है।

सुनना सीखना

हमें कुछ ऐसी अवधारणाओं, सामाजिक कौशलों और दृष्टिकोणों की भी आवश्यकता है जो बातचीत करने की क्षमता को बढ़ावा देते हैं। अकसर लोग एक दूसरे से बात तो करते हैं, लेकिन वास्तव में बातचीत या संवाद नहीं करते। यहाँ एक उदाहरण है :

व्यक्ति 1 : "सरकारी स्कूल हमारे देश के लिए सर्वोत्तम हैं।"

व्यक्ति 2 : "नहीं, नहीं, वे बेकार हैं।"

व्यक्ति 1 : "नहीं, वे बेकार नहीं हैं। उलटा, निजी स्कूल धोखाधड़ी करते हैं और लोगों को लूटते हैं।"

व्यक्ति 2 : "बिलकुल नहीं। वे सरकारी स्कूलों से कहीं बेहतर हैं।"

ये दोनों एक दूसरे से कुछ कहते हुए नज़र आते हैं, लेकिन हम ये नहीं कह सकते कि ये व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे हैं। वास्तव में,

वे इस बारे में नहीं सोच रहे हैं कि दूसरा क्या कह रहा है। वे केवल प्रतिक्रिया दे रहे हैं, और बस यह कह रहे हैं कि दूसरा व्यक्ति ग़लत है।

संवाद की संस्कृति हमें एक दूसरे की बात ध्यान से सुनने जैसी क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए कहती है। उदाहरण के लिए, हम बच्चों और युवाओं के साथ कुछ गतिविधियाँ कर सकते हैं। इनमें हम एक व्यक्ति को किसी विषय पर बोलने के लिए और दूसरों को यह पहचानने को कह सकते हैं कि उनके मुख्य बिन्दु, उनकी भावनाएँ और बुनियादी मूल्य क्या हैं। इस तरह के अभ्यास से बच्चों को अपनी प्रतिक्रिया पर नियंत्रण रखने और यह पहचानने में मदद मिलती है कि दूसरा व्यक्ति जो कह रहा है, उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण है या नहीं।

ऐसे बोलना सीखना जिससे दूसरा पक्ष रक्षात्मक न हो

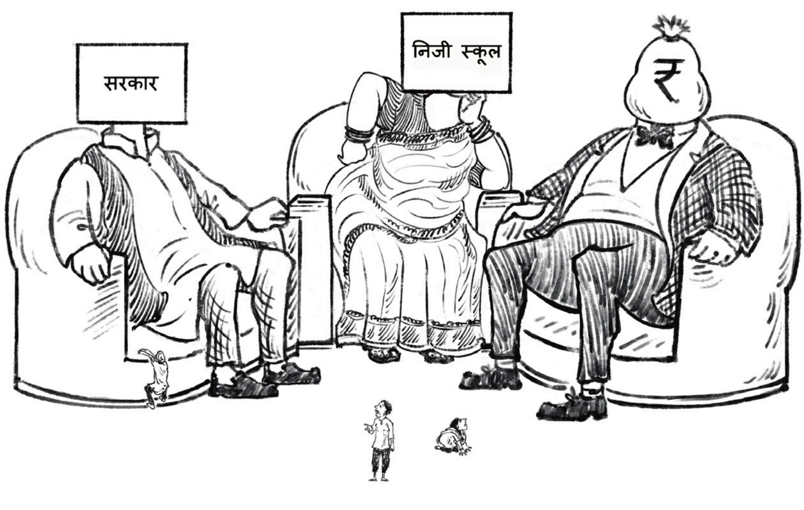
सुनने का तरीक़ों को जानने के अलावा, हमें बोलने के कुछ तरीक़े भी विकसित करने होंगे। हममें से कई लोगों ने ऐसी स्थितियों का अनुभव किया है जहाँ भले ही हम अच्छे तर्क दे रहे हों, हमारे श्रोता रक्षात्मक हो जाते हैं, और हम जो कह रहे हैं उसे स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं। जब मेरा श्रोता सिर्फ़ मेरी बातों को हवा में उड़ाने पर ध्यान दे रहा है, और वास्तव में, मेरे शब्दों पर गम्भीरता से विचार नहीं करता है, तब हमारे लिए संवाद करना मुश्किल हो जाता है। ऐसा कई बार मेरे बात करने के तरीक़े के कारण ही हो जाता है। यह उदाहरण लें :

व्यक्ति 1 : "तुम अमीर लोग सरकारी स्कूलों का महत्त्व नहीं समझ सकते।"

व्यक्ति 2 : "क्या मतलब अमीर लोग... तुम जैसों की तो विचारधारा ही अन्धी है, और पहले ही फ़ेल हो चुकी है। तुम लोग तो देश की हालत ख़राब करने में लगे हुए हो।"

व्यक्ति 1 : "नहीं, तुम जैसे लोग ही इस देश को बर्बाद कर रहे हैं।"...

जब हम इस तरह से बात करते हैं जो दूसरे लोगों या उनके दोस्तों पर हमला करने और उन्हें अपमानित करने जैसा लगता है, तब उनकी सामान्य प्रतिक्रिया ख़ुद को या अपने दोस्तों को बचाने की हो जाती है। वे हमारी मुख्य दलीलें सुनना बन्द कर देते हैं। जब तक कोई बहुत सुलझे हुए व्यक्ति से बात नहीं कर रहे हों, यह बेहतर होता है कि हम ऐसी बातें न करें जो किसी का अपमान करें या जिनसे उन्हें ठेस पहुँचे।



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

हम बच्चों और युवाओं को धमकी-भरी, अपमानजनक भाषा के उदाहरण देकर किसी और तरह की भाषा प्रयोग करने का अभ्यास करा सकते हैं, जिससे दूसरा व्यक्ति रक्षात्मक न हो। मसलन, ऊपर वाली बात को इस प्रकार रखा जा सकता है :

व्यक्ति 1 : "हम हमेशा चीज़ों को अपने अनुभव के अनुसार देखते हैं। चीज़ों को किसी अन्य दृष्टिकोण से भी देखने में मदद मिल सकती है।"

व्यक्ति 2 : "हाँ, लेकिन इससे तुम्हारा क्या मतलब है? किस तरह से?"

व्यक्ति 3 : "उदाहरण के लिए, आइए, यह देखने का प्रयास करें कि बहुत कम आय वाला व्यक्ति स्कूलों को कैसे देख सकता है।"...

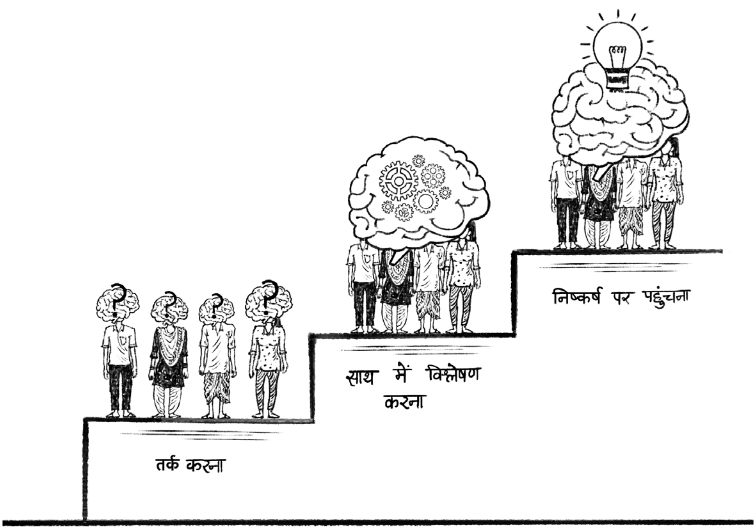
हम अकसर किसी ऐसे व्यक्ति के साथ बातचीत में फँस जाते हैं जो नहीं जानता कि दूसरों की बात ध्यान से कैसे सुनी जाए। लेकिन अपनी ओर से हम फिर भी कुछ प्रयास कर सकते हैं कि बात आगे बढ़े। इसके लिए अगर हम ध्यान रखें कि हमारी बातों में उन्हें किसी क़िस्म का अपमान या धमकी न दिखे, हमारा काम थोड़ा आसान हो जाता है। इससे उन्हें, अभी भी हम जो कह रहे हैं, उसे गम्भीरता से सुनने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

शक्ति और संवाद

लोगों के बीच शक्ति का सन्तुलन इस बात को प्रभावित कर सकता है कि वे एक दूसरे से कैसे बात करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि माता-पिता और निजी स्कूलों के प्रबन्धकों की ओर से सरकार पर किसी क़िस्म का दबाव नहीं डाला जा सकता, तब सरकार का प्रशासन उनके विचारों को नज़रन्दाज़ कर सकता है। या, विपरीत स्थिति पर विचार करें जहाँ निजी स्कूल एक बहुत शक्तिशाली लॉबी हैं, जबकि सरकारी स्कूलों के बच्चों के माता-पिता के पास कोई राजनीतिक प्रभाव नहीं है। ऐसे में, सरकारी स्कूलों के समर्थकों की बातों को नज़रन्दाज़ करने का प्रलोभन होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि कहने वाले कितनी शक्तिशाली स्थिति में हैं, और उनके पास कितनी ताक़त है, वह इस बात को प्रभावित करता है कि हम उनकी बात को कितने ध्यान से सुनते हैं और कितनी गम्भीरता से लेते हैं। अगर दो लोग समान रूप से शक्तिशाली हों, तब उनमें से कोई भी एक दूसरे पर ज़बरदस्ती अपनी बात को मनवाने का दबाव नहीं डाल सकता। ऐसी परिस्थिति में ज़्यादा मुमकिन है कि दोनों लोग एक दूसरे की बात सुनने और समझने की तरफ़ बढ़ेंगे।

इसलिए अच्छा है कि अगर हम बातचीत करना चाहते हैं, तब भी अपनी ताक़त बनाए रखने की कोशिश करें। लेकिन हम सिर्फ़ ताक़त के आधार पर मामले तय नहीं करते। हम मनुष्य इस या उस पक्ष का साथ देने में नैतिक तर्कों



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

और साक्ष्यों पर भी ध्यान देते हैं। यह बहुत आसान हो जाता है जब हमारे समाज में बड़े पैमाने पर संवाद की संस्कृति हो। जब शक्तिशाली लोग भी संवाद की संस्कृति को साझा करते हैं, हम पाते हैं कि वे तर्क सुनने के लिए बहुत आसानी से झुक जाते हैं, और सिर्फ़ वही नहीं करते हैं जो सबसे सुविधाजनक हो।

हमें अपना संविधान तो बहुत पहले मिल गया था। आज हमें उन संस्कृतियों के निर्माण पर काम करने की ज़रूरत है जोकि उसकी नींव को ज़्यादा मज़बूत कर सकें।

इसलिए संवाद की संस्कृतियों को मज़बूत करना आवश्यक है। शक्ति दूसरों को आपकी बात सुनने में मदद करती है। इसी प्रकार, एक दूसरे को सुनने और समझने के मूल्य व कौशल भी आपकी सुनवाई में मदद करते हैं, और अन्ततः, वे यह तय करने का सबसे अच्छा तरीक़ा हैं कि नैतिक रूप से क्या सही है। बेशक, वे सबसे अच्छा तब काम करते हैं, जब दोनों पक्षों में बातचीत की संस्कृति होती है। अकसर लोग कहते हैं कि दूसरा समूह संवाद में विश्वास नहीं करता, तब हम इसे व्यवहार में लाने का प्रयास क्यों करें। लेकिन तार्किक होना या दूसरों की बात सुनने से इंकार करना व्यवहारिक दृष्टिकोण नहीं है। यदि हम संवाद का प्रयोग नहीं करेंगे, दूसरा भी उससे मना कर देगा, और हम सदैव इसी चक्र में फँसे रहेंगे। किसी को तो संवाद की संस्कृति का निर्माण शुरू करना ही होगा, और क्यों न हम ही उसे बनाएँ, चाहे छोटे-से तरीक़े से ही।

लोकतंत्र में संवाद के स्थान के साथ-साथ और भी बहुत कुछ है, मगर मुझे अब यहाँ रुक जाना चाहिए। अन्त में, आइए, हम फिर से याद करें कि बाबा साहेब अम्बेडकर ने संविधान के बारे में क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि लोकतंत्र केवल क़ानून बनाने या उन्हें काग़ज़ पर लिखने से जीवित नहीं रह सकता। डॉ अम्बेडकर ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि लोकतंत्र को फलने-फूलने के लिए हमें समाज में कुछ संस्कृतियों का प्रसार करना होगा। इनके मूल में, अन्य बातों के अलावा, बन्धुत्व या मैत्री थी। गौतम बुद्ध ने मैत्री का वर्णन एक कहानी के माध्यम से किया है जिसमें सड़क पर चलने वाले एक भिक्षु को दूसरों से गालियों का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन फिर भी वह सभी के लिए प्यार और करुणा रखता है। मतों में अन्तर होने के बावजूद, सभी के प्रति करुणा और परोपकार की भावना ही समाज को एक साथ बाँधे रखती थी। उन्होंने कहा कि बन्धुत्व के बिना इस देश में न तो स्वतंत्रता पनपेगी न ही समानता। जब हम सभी के लिए सम्मान की संस्कृति बनाते हैं, यहाँ तक कि उन लोगों के लिए भी जो हमसे असहमत हैं, और जब हम आपसी स्नेह की भावना से बातचीत करने में सक्षम होते हैं, तब ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसे हम भारतीय मिलकर दूर नहीं कर पाएँगे।

हमें अपना संविधान तो बहुत पहले मिल गया था। आज हमें उन संस्कृतियों के निर्माण पर काम करने की ज़रूरत है जोकि उसकी नींव को ज़्यादा मज़बूत कर सकें।

अमन मदान ने मानवशास्त्र और समाज शास्त्र का अध्ययन किया है। पिछले तीन दशकों से शिक्षा और समाज के मुद्दों पर अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में संलग्न हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : amman.madan@apu.edu.in